International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 851-852

भारत में दलित आन्दोलन (एक परिचय)

मनोज कुमार
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

किसी भी आन्दोलन की उत्पत्ति के पीछे एक बहुत प्रभावित और विस्तारित कारण होता है। किसी भी आन्दोलन का विकास अचानक या एक दिन में नहीं होता अपितु यह समयाकालिक परिस्थितियों की समस्याओं का चरम उबाल होता है। इसी का उदाहरण भारत में दलित आन्दोलन का जन्म है। भारत तो सोने की चिड़िया कहा जाने वाले देश है परन्तु उस सोने को चुराने वाले अर्थात सामाजिक भेदभाव करने वाले लागों ने अपने स्वार्थ और ईर्ष्या के फलस्वरूप दलितजनों में उपेक्षा की भावना को जन्म दिया। परन्तु धीरे–धीरे ईर्ष्या और वैमनस्य के शिकार इस वर्ग ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए एकजुट होना स्वीकार किया और उन्हें रास्ता दिखाने वाले, अंधेरे से उजाले में लाने वाले डॉ0 भीमराव अम्बेडकर जैसे महान हस्तियों ने अपने वैचारिक क्रिया कलापों से इनका मार्गदर्शन किया। घटना उस रात की है जब डॉ0 अम्बेडकर नेहरू मंत्रिमण्डल में विधि मंत्री थे। एक रात लगभग दो–ढाई बजे कुछ सामाजिक कार्यकर्ता उनसे मिलने आऐ, तो उन्होंने डॉ0 अम्बेडकर को अपने पुस्तकालय में अध्ययन करते हुए पाया। कार्यकर्ता शालीनतावश बोले– ''हमें आपसे कुछ बातें करनी थी, लेकिन रात बहुत बीत गयी है, इसलिए आप सुबह का कोई समय दे दीजिए।'' डॉ0 अम्बेडकर ने कहा, ''आप बात कीजिए, सुबह की क्या बात है, मेरे पास अभी भी समय है।'' उन लोगों ने कहा, ''हम लोग इस समय कई नेताओं के यहां गये, सभी को सोते हुए पाया, केवल एक आप ही हैं जो इस समय जाग रहे हैं। इसका क्या कारण है?'' इस प्रश्न के उत्तर में जो बात डॉ0 अम्बेडकर ने कही वह आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने कहा, ''देखिए! जिन लोगों के पास आप गये थे, उनकी जातियाँ जाग रही हैं, इसलिए वे आराम की नींद सो रहे हैं ओर मेरी जाति सो रही है, इसलिए में जाग रहा हूं, पहरेदारी कर रहा हूँ कि कोई उसके अधिकारों पर डाका न डाल ले।''[1]
उनके इस कथन से यह स्पष्ट है कि उस समयकाल में भी दलित समाज अपनी गहरी नींद में था अर्थात् अभी भी उनमें चेतना नहीं थी।

एक कवि श्रीपाल सबनीस ने जाति पर लिखा –

''आत्म सम्मान का सूर्य विस्फोटक लपटों से जल रह है। इसको जाति को जलने दो।''[2]

श्रीपाल सबनीस की कविता भारत में दलितों के आक्रोश तथा आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है। इस भावना के साथ कि वे सदियों से शोषित रहे हैं, दलित रहे हैं और अब समय आ गया है कि सदियों पुराने इस अन्धकार से बाहर निकला जाए।

स्वतंत्रता से पूर्व में समय के मजबूत जाति विरोधी आन्दोलन उभरे थे। इन आन्दोलनों में महाराष्ट्र और तमिलनाडु के गैर–ब्राह्मण आन्दोलन शामिल थे। इनके अतिरिक्त इन दलित आन्दोलनों में महाराष्ट्र, पंजाब (आदि धर्म आन्दोलन), पश्चिमी उत्तर प्रदेश (आदि हिन्दू आन्दोलन), तटीय आन्ध्र (आदि–आन्ध्र) तथा हैदराबाद (आदि–हिन्दू) आन्दोलन शामिल थे। इसके अतिरिक्त गैर–ब्राह्मण विचारधारा की प्रवृत्ति कई अन्य स्थानों पर भी थीं। मैसूर और बिहार में कमजोर और असंगठित दलित भी अपने को स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। स्वतन्त्र भारत में दो शताब्दियों तक दलित आन्दोलन निष्क्रिय रहे लेकिन 1970 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में ये आन्दोलन फिर उठ खड़े हुए। 1972 में 'दलित पैंथर' स्थापित कर लिया गया। इस बार दलित और उनके संगठन स्पष्टतः अग्रिम पंक्ति में थे।[3]

जैसा कि मार्क्सवादी ढाँचे के सिद्धान्तशास्त्री इमानुल वैलेन्सटील ने कहा– दलित और गैर–ब्राह्मण जाति विरोधी आन्दोलनों को व्यवस्था विरोधी आन्दोलनों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। यदि प्रकार्यात्मक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की भाषा में कहें, तो बजाय इसके कि इन्हें मानक सम्बन्धी आन्दोलन कहें, इन्हें मूल्य सम्बन्धी आन्दोलन कहना उचित होगा।[4] इसका अर्थ यह भी है कि इन आन्दोलनों का प्रयास भारतीय सामाजिक व्यवस्था की मूल संरचना को रूपान्तरित करना है। इन आन्दोलनों का प्रयास था कि जाति और उसके साथ जुड़े हुए सामाजिक दमन, आर्थिक शोषण तथा राजनीतिक प्रभुत्व को समाप्त कर उसके स्थान पर एक समतावादी समाज स्थापित किया जाए। भारतीय समाज में अन्य सामाजिक आन्दोलनों की तरह सुधारवादी प्रवृत्तियां भी इनमें मौजूद थीं। दलित आन्दोलनों में ये प्रवृत्तियां कांग्रेस के जगजीवन राम, हिन्दू महासभा के दलित जैसे एम0सी0 राजा और जी0ए0गवई द्वारा प्रस्तावित की गई थीं। गैर–ब्राह्मण आन्दोलनों में जस्टिस पार्टी और बम्बई प्रेसीडेन्ट की गैर ब्राह्मण पार्टी उन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व कर रही थी। ये प्रवृत्तियां रूढ़िवादी थी तथा इसकी तुलना में सत्यशोधक समाज और आत्म सम्मान आन्दोलन अधिक आमूल परिवर्तनवादी थे। सुधारवादी प्रवृत्तियां भी गाँधी के हरिजन आन्दोलन में देखी जा सकती थीं, जो ऊँची जातियों के समाज सुधार परम्पराओं की थी। ये प्रवृत्तियां हिन्दू धर्म की अशुद्धता को साफ करना चाहती थीं और यदि महादेव गोविन्द रनाडे के शब्दों को देखें तो यह किसी पेड़ की बीमार शाखाओं को काटने का प्रयास था जिससे वह पेड़ अच्छी तरह से पनप सके।[5]

इसके विपरीत जाति विरोधी आन्दोलन इस पेड़ को ही गिरा देना चाहते थे। विशेष रूप से 1970 में बिहार में दलित आधारित, नक्सलवादी आन्दोलन में हुआ। एक सहानुभूति रखने वाले पत्रकार ने इसी क्रान्ति को पुनर्रचना के कार्य की संज्ञा दी–

लोग अपनी कब्र से उठ खड़े हुए हैं, वे जैसे पगला गए हैं और उन्माद में सामन्तवाद की शाखाएं काट रहे हैं। उनका इच्छा तत्काल ही 2500 वर्ष पुराने पेड़ों को गिरा देने की हैं अब तक उनका निरादर किया गया, उन पर कोड़े बरसाए गए, उनकी हत्या की गई और एक आदमी की जो परिस्थिती होनी चाहिए, उसे देने से मना किया गया। उनकी पत्नियों को वेश्या समझा गया और तब किसी ने उसे नक्सलवादी के बारे में समाचार दिया। तत्काल चीजें

बदलना प्रारम्भ हो गई। हरिजन मर गया कुएरी जला दिया गया। नया आदमी जो अभी लपटों से उठा है जब यह महसूस करता है कि ना वह हरिजन है न ही कुएरी, अब वह एक मनुष्य है।[6]

यदि देखा जाए तो काफी प्राचीन समय से ही यह निम्न वर्ण व्यवस्था चली आ रही है। प्राचीन हिन्दू व्यवस्था में निम्न वर्गों का एकदम पृथक स्थान था। वैदिक युग में इन्हें चण्डाल कहकर सम्बोधित किया जाता था। चण्डाल को अस्पृश्य जाति के रूप में देखा जाता था। पंतजली में चण्डाल के अनेक प्रकार मिलते हैं। मनु का कहना है कि चण्डाल जाति का जन्म प्रतिलोम विवाह के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है। अंग्रेज इन्हें 'अस्पृश्य जाति' कहते थे। 1928 में साइमन कमीशन ने इस शब्द का प्रथम बार प्रयोग किया। भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जाति कहा गया है। गांधी जी ने इन्हें 'हरिजन' कहकर सम्बोधित किया।

डॉ0 अम्बेडकर ने दलित आन्दोलन को एक राजनीतिक स्वरूप भी प्रदान किया। डॉ0 अम्बेडकर ने दलित जातियों को राजनीतिक सेना के रूप में भी परिणित करने का प्रयास किया। उनके राजनैतिक दावे डॉ0 अम्बेडकर की वकालत के कारण मान भी लिए गए और इनके लिए 1935 के विधान में विशेष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई थी। इस प्रकार डॉ0 अम्बेडकर ने दलित वर्ग को एक मुकाम तक पहुंचाने का प्रयास किया।

भारत में शताब्दियों से अस्पृश्य जातियाँ रही हैं। उनके नरकीय जीवन से साधु–सन्त आदि सभी दुःखी और चिन्तित थे। धार्मिक सुधार आन्दोलनों द्वारा इस घृणित सामाजिक कुरीति के समाधान हेतु प्रयास किए गए। ए0आ0देसाई इस पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं– ''हिन्दू समाज में सदियों से अस्पृश्यता का प्रचलन रहा है। बुद्ध, रामानुज, रामानन्द, चैतन्य, कबीर, नानक, तुकाराम और अन्य लोगों द्वारा चलाए गए व्यापक और आधारभूत मानवीय एवं धार्मिक सुधार आन्दोलनों का भी युगों की पुरानी इस अमानुशिक प्रथा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परम्परा सम्मत, धर्मपूत यह प्रथा अपनी सम्पूर्ण बर्बर शक्ति के साथ सदियों तक जीवित रही।''[7]

इस प्रकार यदि समय–समय का अध्ययन किया जाए तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि प्राचीन काल से लेकर चाहे वह वेदों का समय हो, मनु का समय हो, या स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ब्रिटिशों का समय हो या स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात के काल में या नव जागरण काल में बल्कि समय–समय पर तथा जगह–जगह पर इस जात–पात के भेदभाव को मिटाने का प्रयास किया गया। जिसमें डॉ0 अम्बेडकर से लेकर आधुनिक युग में भीम आर्मी के संस्थापक चंद्रशेखर रावण जैसे लोगों ने अपने–अपने स्तर पर संघर्ष जारी रखा है। इन सब के बीच समय–समय पर साहित्य के माध्यम से भी विरोध किया गया जिसमें सन्त रैदास, कबीर, पीपा, धन्ना, सहजोबाई आदि शामिल हैं। मध्यकाल में रैदास हिन्दी दलित साहित्य के प्रथम दलित चेतना सम्पन्न कवि हैं, जिन्होंने वर्ण व्यवस्था का विशपान स्वयं किया था। उन्होंने सबसे पहले वर्ण के जन्मजात आधार को ही नकारा –

''रैदास जन्म के कारणै होत न कोई नीच।
नर को नीच करि डारि हैं ओछे करम की कीच।।''[8]

इसी प्रकार जब उत्तराखण्ड आन्दोलन चल रहा था, तब वहां पर हर व्यक्ति की जुबान पर बल्ली सिंह चीमा का जनगीत था –

''ले मसालें चल पड़े हैं लोग मेरे गाँव के।
अब अन्धेरे जीत लेगे, लोग मेरे गाँव के।।''

इस प्रकार की रचनाओं द्वारा भी साहित्य के माध्यम से अपना रोष प्रकट किया गया।

अतः देखा जाए तो समय–समय पर सामाजिक परिवर्तन होता रहा है और होता ही रहेगा। बस एक बात की चिन्ता है मुझे कि कब अपना ये भारतवर्ष, सोने की चिड़िया कहा जाने वाला प्यारा भारतवर्ष, इन सभी वैमनस्य की भावना पर अपनी जीत हासिल कर पाऐगा। जिस दिन ऐसा होगा, उस दिन हिन्दुस्तान में सूर्य की एक नई किरण का उदय होगा और जनमानस नई आशाओं के साथ अपनी आंखे खोलेंगे।

संदर्भ

1. डॉ0 एन सिंह, दलित चिंतन : अनुभव और विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. बारबरा जोशी (सम्पादक), अनटचेबल वायसेस ऑफ द दलित लिबरेशन मूवमेंट (लन्दन, जेड बुक्स, 1986) पुस्तक में श्रीपाल सबनीस, स्वयं का अनुवाद।
3. गेल ओमवेट, दलित और प्रजातान्त्रिक क्रान्ति (उपनिवेशीय भारत में डॉ0 अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन) सेन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009, नरेश भार्गव (अनुवादक)
4. इमानुल के शोध पत्र से लिया गया है। 'द राइज एंड फ्यूचर डिमाइज ऑफ द वर्ल्ड कैपिटिलिस्ट सिस्टम : कान्सेप्ट्स फॉर कम्पेरेटिव एनेलिसिस'।
5. कुमारी जयावर्धना द्वारा, फेमीनिज्म एंड नेशनलिज्म' इन द थर्ड वर्ल्ड (लन्दन, जेड, बुक्स, 1986)
6. अरूण सिन्हा 'क्लास वार इन भोजपुर' इकॉनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 7 जनवरी 1978।
7. ए. आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि।
8. डॉ0 एन0 सिंह, दलित चिन्तन : अनुभव और विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।